ICSSR Sponsored
ISSN: 2319-9997

Journal of Nehru Gram Bharati University, 2025; Vol. 14 (I):316-322

भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता

सोमित सिंह एवं कृपा शंकर यादव
शिक्षक-शिक्षा विभाग,
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज
Email: somitsingh1008@gmail.com

Received: 21.03.2025 Revised:02.05.2025 Accepted: 23.05.2025

सारांश

रवीन्द्रनाथ टैगोर के संदर्भ में यह कहा जाता है कि टैगोर एक कवि के रूप में ही जाने जाते है दार्शनिक के रूप में नहीं। परन्तु यह सत्य नहीं है और इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने भारतीय उपनिषदों तथा ग्रन्थों का इतना गहराई से अध्ययन किया था कि वह एक दार्शनिक के रूप में भी प्रसिद्ध हुये किन्तु इतना अवश्य है कि टैगोर पहले एक कवि है बाद में दार्शनिक। टैगोर को दार्शनिक रूप में स्वीकार न करने का एक कारण यह भी है कि उन्होंने दर्शन की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी है। परन्तु उनकी रचनाओं में हमें इस प्रकार के संकेत मिलते हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने एक आस्तिकवादी दर्शन की स्थापना की है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्ति निकेतन शिक्षा की प्रासंगिकता परिलक्षित होती है। श्री टैगौर का कहना है कि मानव जीवन का मूल्य मात्र शिक्षा प्राप्त करना ही नहीं किसी पद पर नियुक्त हो जाना नहीं बल्कि मानवतावाद के मूल्यों की रक्षा करना तथा अध्यात्मिक चेतना को विकसित करना तथा भाईचारा, विश्वबन्धुत्व को बल देना मनुष्य के जीवन का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। अतः नई शिक्षा नीति-2020 के सिद्धान्त एवं उद्देश्यों में विश्व बंधुत्व के उद्देश्यों में श्री टैगोर की अमिट छाप आज भी दिखाई देती है। अतः भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षा दर्शन विद्यार्थियों के साथ-साथ समाज एवं देश को एक नयी दिशा प्रदान करने के साथ-साथ विश्वबन्धुत्व एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में विशेष योगदान प्रदान करती है।

मुख्य बिन्दु- *भारतीय ज्ञान परम्परा, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, शिक्षा दर्शन, शान्ति निकेतन शिक्षा, नई शिक्षा नीति-2020, आध्यात्मिक , प्रासंगिकता*

प्रस्तावना-

प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत सामाजिक जीवन में एक द्वन्द्व का अनुभव करता है, जब तक यह द्वन्द्व रहेगा तब तक व्यक्ति एवं समाज का समुचित विकास नहीं हो सकता। शिक्षा द्वारा इस

द्वन्द्वात्मक स्थिति को दमन किया जाना चाहिए। शिक्षा को निरन्तर इस बात कि लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए कि वह हमारे सांस्कृतिक विसंमजना का परिहार करती रहे। यह शिक्षा का मनुष्य के जीवन में प्रभावशाली कार्य है। श्री टैगोर शिक्षा की महत्ता को दर्शाते हुए करते है कि शिक्षा मानव के व्यक्तित्व का विकास करती है हम व्यक्तित्व विकास को ही महत्वपूर्ण मानते है क्योंकि यहीं जीवन का सत्य है, मूल है क्योंकि यही एक मात्र अनुपम निधि है जिससे हम अपना कह सकते है। जिससे हम अपने जीवन में व्यक्तिगत व सामाजिक हित कर सकते है, यह शिक्षा के माध्यम से सम्भव होता है। वर्तमान में यही शिक्षा का लक्ष्य है। वास्तविक व्यवस्था में प्रौद्योगिक विज्ञान, तकनीकी सभी का मानव के जीवन में महत्व है इसमें नये-नये खोजों को शिक्षा द्वारा मानव जीवन के योग्य बनाया जाता है। अतः व्यवस्था प्रणाली चाहे जैसी हो शिक्षा मनुष्य के जीवन के लिए स्थान खोजने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हो। शैक्षिक व्यवस्था प्रणाली हो अथवा राजनैतिक किसी रहस्यमय ढंग से नहीं बदली जा सकती उनमें परिवर्तन तभी होगा, जब हमारे अन्तर कोई मौलिक परिवर्तन के अभाव में प्रायः सभी प्रणालियाँ प्रायः मृत होती है इसके लिऐ सबसे पहले व्यक्ति का महत्व होता है न कि व्यवस्था की व्यवस्था व्यक्ति के लिए होती है। जब तक व्यक्ति स्वयं अपनी समग्र प्रक्रिया को नहीं समझ लेता तब तक कोई भी व्यवस्था विश्व में स्थायी शान्ति नहीं स्थापित कर सकती।

अतीत वर्तमान को मजबूत करता है। किसी भी देश का अतीत उसकी भावी प्रेरणा एवं वर्तमान का मूल स्त्रोत है। अति प्राचीन काल से भारत सिद्ध पुरूषों एवं युग निर्माताओं का देश रहा है। श्री टैगोर भी उनमें से एक थे। जिन्हें नवयुग की नवचेतना का मूर्तिमान पुरूष माना जाता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के संदर्भ में यह कहा जाता है कि टैगोर एक कवि के रूप में ही जाने जाते है दार्शनिक के रूप में नहीं। परन्तु यह सत्य नहीं है और इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने भारतीय उपनिषदों तथा ग्रन्थों का इतना गहराई से अध्ययन किया था कि वह एक दार्शनिक के रूप में भी प्रसिद्ध हुये किन्तु इतना अवश्य है कि टैगोर पहले एक कवि है बाद में दार्शनिक। टैगोर को दार्शनिक रूप में स्वीकार न करने का एक कारण यह भी है कि उन्होंने दर्शन की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी है। परन्तु उनकी रचनाओं में हमें इस प्रकार के संकेत मिलते हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने एक आस्तिकवादी दर्शन की स्थापना की है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर आत्मा को तीन रूपों में स्वीकार करते है उनके अनुसार उसका पहला रूप रक्षा भावना का होता है। रक्षा भावना से तात्पर्य आत्मा को अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास करना है और अपने को नष्ट होने से बचाना है। टैगोर के अनुसार उसका दूसरा रूप अपने अस्तित्व को जानना अर्थात् अपने अस्तित्व का ज्ञान है तथा दूसरों के सामने अपने आपका अनुभव करना है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य ज्ञान विज्ञान की खोज के लिये प्रेरित होता है तथा तृतीय रूप आत्मभिव्यक्ति है जिसके फलस्वरूप मनुष्य विभिन्न प्रकार से अपना सायुज्य तथा समीप्य

स्थापित करता है टैगोर के अनुसार मानव आत्मा इस तृतीय रूप में भी है।

सत्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुये टैगोर ने लिखा है कि ''सत्य का संसार उसके अनेक जड़ पदार्थों में नहीं है वरन् उसके माध्यम से अभिव्यक्त होने वाली एकता में हैं। हमारा वस्तुओं का समस्त ज्ञान उन्हें विश्व के सम्बन्ध में जानना है उसके सम्बन्ध में जो कि परम सत्य है।''

रवीन्द्रनाथ टैगोर जगत एवं प्रकृति में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध मानते है उनके अनुसार संसार आध्यात्मिक आनन्द तथा आध्यात्मिक जीवन का स्रोत होता है तथा प्रकृति मनुष्य की आत्मा का वास स्थल है। टैगोर का कथन है कि, ''मनुष्य भी अपना 'संतुलन खो देगा यदि वह सर्वव्यापी प्रकृति की गोद छोड़कर केवल मानवता के ही रास्ते पर चलें।

रवीन्द्रनाथ टैगोर धर्म और नैतिकता के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध मानते है उनके अनुसार सच्चा धर्म नैतिक चेतना को ऊँचा उठाना है अतः वह धर्म और नैतिकता को एक ही श्रेणी में रखते थे उनके अनुसार धर्म और नैतिकता द्वारा व्यक्ति अपना विकास तथा अध्यात्मिकता एवं पूर्णता को प्राप्त करता है।

उनका यह विचार था कि, ''हमारे भौतिक जीवन में हमारे और संसार की अन्य वस्तुओं के बीच संयोग और वियोग दोनों है।'' अर्थात टैगोर के अनुसार इसका प्रभाव हमारे भौतिक और आध्यात्मिक जीवन पर भी पड़ता है किन्तु दोनों के मध्य सामंजस्य स्थापित होना अत्यन्त आवश्यक होता है और प्रेम के द्वारा ही दोनों के मध्य सामजस्य स्थापित होता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन की भारतीय ज्ञान परम्परा में महत्व-

श्री गुरूदेव रवीन्द्रनाथ जी अपने शिक्षा दर्शन में मानव की आध्यात्मिक उन्नति पर बहुत अधिक बल दिया है। वे भारतीय प्रकृतिवाद के प्रणेता कहे जा सकते हैं, परन्तु भौतिकवादी प्रकृतिवाद की लीक को छोड़ कर उन्होंने आध्यात्मिक प्रकृतिवाद का आश्रय लिया। उनके विचारों में तात्कालिक कृत्रिम सामाजिक परम्पराओं के प्रति एक प्रखर प्रतिक्रिया दिखाई देती है। उन्होंने लिखा है ''समन्वयवाद को शिक्षा जगत के समक्ष एक नया अध्याय बनाया जिसकी सराहना विश्व स्तर पर की जाती है, यही श्री टैगोर की सबसे बड़ी देन भी मानी जाती है। उन्होंने अपने इस नये सिद्धान्त के आधार पर समूचे विश्व में एक नया रूप लिया। यह था भौतिकता आध्यात्मिक जीवन के समन्वय पूर्व पश्चिम के बीच समन्वय के ये विचार आज विश्व भर में चर्चित हैं। श्री टैगोर की रचना गीतांजलि की व्याति के साथ-साथ उनके विश्व बोध दर्शन का अनुसरण शिक्षा जगत में बखूबी किया जा रहा है। यही कारण है कि उनके द्वारा स्थापित विश्व भारती के आदर्शों का अनुसरण आज पूरे भारत की शिक्षा संस्थायें कर रही है।''

श्री टैगोर जी ''विश्व-बन्धुत्व'' को आध्यामिक एकता तथा विश्व बन्धुत्व के रूप में प्रतिपादित किया। इसके साथ-साथ उन्हें देशभक्ति का महत्व ज्ञात था गुरूदेव देश प्रेम के महत्व को स्वीकार करते थे। उनकी नजर में देश प्रेम का अर्थ था अपने देश व उस देश व उसकी परम्परा

से तादात्म्य स्थापित करना। गुरूदेव का अपने पूर्वजों की छोड़ी गयी सांस्कृतिक थाती के प्रति अपूर्व सम्मान था। वे मातृभूमि का अपमान कत्तई बर्दास्त नहीं करते थे। उनकी देशभक्ति में जाति, धाार्मिक, कटुता तथा राजनीति अशान्ति के लिए कोई स्थान नहीं था। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण ही उन्होंने महात्मा गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन का समर्थन नहीं किया इसी विचार के कारण गुरूदेव ने भारत में 'कम्यूनल अवार्ड' लागू किये जाने का विरोध किया।

श्री टैगोर ने सामाजिक पुनः निर्माण की तरफ बल दिया। गुरूदेव की मान्यता थी कि हमारे पूर्वजों ने राज्य के बजाय समाज को सशक्त बनाया था।

उन्होंने शिक्षा का आधार राष्ट्रीय तथा मातृभाषा में तैयार करने का विचार दिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को भी अपनाया जाये इस दिशा में कार्य किया। उन्होंने पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में इतिहास, भ्ूगोल, विज्ञान एवं साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ नृत्य, संगीत, कला, अभिनय, भ्रमण, बागवानी, समाजसेवा पर बल दिया। साथ ही स्वशासन, खेलकूद, व्यायाम तथा गृह प्रबन्ध जैसी क्रियायें भी सम्मिलित की।

शिक्षण विधि के संदर्भ में श्री टैगोर ने क्रिया द्वारा शिक्षा, भ्रमण द्वारा सीखना, स्व-प्रयास एवं स्वाध्याय द्वारा शिक्षा, वाद-विवाद एवं प्रश्नोत्तर विधि, प्रत्यक्ष अनुभव विधि आदि का सहारा लिया था।

श्री टैगोर जो शिक्षा में अनुशासन को नैतिक विकास के लिए आवश्यक मानते थे लेकिन वे वाह्य अनुशासन के एवं दमनात्मक अनुशासन के घोर विरोधी थे। वे अनुशासन को ही उपयुक्त मानते थे। उनका मानना था कि बच्चे स्वभाव से अनुशासनहीन नहीं होते बल्कि जब उनकी स्वतंत्र क्रियाओं में बाधा उत्पन्न होती है तब वे अनुशासनहीन हो जाते है।

श्री टैगोर ने जन-शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, धार्मिक-शिक्षा एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा पर विशेष बल दिया था।

शिक्षा के क्षेत्र में उनका सबसे बड़ा योगदान ''विश्व-भारती'' विद्यालय हैं। जहाँ स्नातक, स्नातकोत्तर, शोध स्तर तक की शिक्षा दी जाती है। जहाँ उन्होंने आदर्शों का अनुसरण करते हुए पूर्वी एवं पाश्चात्य सभ्यता में सामन्जस्य स्थापित किया है। उन्होंने जान ड्यूवी, फ्रोवेल तथा पेस्तालॉजी की भाँति अपने विचारों को व्यवहार रूप में क्रियान्वित किया। विश्व भारती के स्वतंत्र वातावरण में स्वक्रिया स्वाध्याय प्रयोग तथा दृश्य श्रवण सामग्री पर बल दिया जाता है। पाठ्यक्रम का आधार पूर्व अनुभव क्रियाशीलता तथा जीवन से सम्बन्धित यथार्थवादी, उपयोगी तथा जीवन के सभी पक्षों पर आधारित ज्ञान को बनाया गया। सौन्दर्य बोध की शिक्षा के लिए ललित कलाओं जैसे संगीत, नृत्य, कविता, अभिनय, तथा चित्र कला के लिए ''कला भवन'' चलाया गया। श्री टैगोर की शिक्षा तीन वादों मानवतावाद, आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद का समन्वित रूप थी। वास्तव में उन्होंने भारतीय शिक्षा और भारत वासियों के उत्थान के लिए काफी

कुछ किया। शिक्षा के क्षेत्र में टैगोर जी के योगदान को डा0 मुखर्जी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है- ''श्री टैगोर आधुनिक भारत के शैक्षिक पुर्नस्थान के सबसे बड़े पैगम्बर थे। उन्होंने अपने देश के सामने शिक्षा के सर्वोच्च आदर्शों को स्थापित रखने के लिए निरन्तर संघर्ष किया। उन्होंने अपनी शिक्षा संस्थाओं में शैक्षिक प्रयोग किये, जिन्होंने उनको आदर्श जीवन का प्रतीक बना दिया।''

निष्कर्ष-

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर शिक्षा को केवल आध्यात्मिक अथवा बौद्धिक राज की प्राप्ति ही नही मानते थे बल्कि वह शिक्षा को शारीरिक, आर्थिक सामाजिक मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास हेतु आवश्यक समझते थे। इसके द्वारा मनुष्य में विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास होता है।

अतः वर्तमान समय में भी शिक्षा का यथार्थवादी दृष्टिकोण होना चाहिए जिसके अन्तर्गत केवल ज्ञानर्जन करना ही नहीं बल्कि बालक का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

टैगोर ने शिक्षा के नैतिक तथा आध्यात्मिक उद्देश्य को महत्व प्रदान किया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में आत्मनिर्णय और आत्मानुशासन की क्षमता होनी चाहिए। यह गुण शिक्षा के द्वारा ही विकसित किये जा सकते है। शिक्षा की प्रक्रिया जीवन से परिपूर्ण एवं व्यवहारिक होनी चाहिए। शिक्षा की प्रक्रिया अपरिचित से परिचित की ओर, समीप से दूर की और तथा सामान्य से विशिष्ट की ओर ले जाने वाली होनी चाहिए। शिक्षृा की प्रक्रिया में स्वतन्त्र प्रयत्न एवं चिन्तन होना चाहिए था साथ ही इसमें क्रियाशीलता, खेल रचना तथा सृजन, आनन्द जिज्ञासा और रूचि का भी प्रयोग होना चाहिए। इन सभी तथ्यांे को अपनाने से शिक्षण विधि प्रभावशाली हो सकती है।

वर्तमान समय में विद्यार्थियों में पाश्चात्य परम्पराओं के अन्धानुकरण करने की प्रवृत्ति बलवती होती जा रही हैं ऐसे समय में टैगोर के शिक्षार्थी से सम्बन्धित विचारों को अपनाना चाहिए। उनका मत था कि बालाकं को अपने शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ ही नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास हेतु सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ टैगोर का विचार था कि पाठ्यक्रम जीवन के अनुभवों से सम्बन्धित होना चाहिए। उनके अनुसार पाठ्यक्रम में कुछ सीमित क्रियाओं को स्थान नही ंदेना चाहिए वरन् इसके अन्तर्गत अनेक क्रियायें सम्मिलित होनी चाहिए। पाठ्यक्रम का चयन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधारो ंपर होना चाहिए। जिससे एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बनाये रखा जा सके। इसके अन्तर्गत प्रकृति और मनुष्य की शिक्षा में सन्तुलन स्थापित किया जाना चाहिए। इस प्रकार आज विद्यालय में टैगोर के क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम की व्यवस्था करनी चाहिए। शिक्षा द्वारा बालकों में उच्चकोटि की धार्मिक भावना को विकसित किया जाना चाहिए जिससे उनमें मानवता का कल्याण करने की क्षमता का विकास हो सके। शिक्षा के द्वारा छात्रों को 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम' जैसे मूल्यों का

साक्षात्कार कराना चाहिए। धार्मिक शिक्षा के प्रति गुरूदेव का दृष्टिकोण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रहणीय है। टैगोर ने मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म माना है। आज भारत में धर्म को इसी रूप में स्वीकार करना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा के अन्तर्गत देशवासियों के सचिव मूल्यों, परम्पराओं, प्रथाओं तथा आदर्शों को स्वाभाविक रूप से विकसित करना चाहिये। राष्ट्रीयता के साथ ही विश्व-कल्याण को भी महत्व दिया जाना चाहिए।

श्री टैगोर ने अपने विचारों को विश्व भारती के रूप में साकार किया। विश्व-भारती का मानववाद, विश्व एकता सृजनात्मकता, कलात्मकता, स्वतंत्रता, सौन्दर्य बोध, प्राकृतिक जीवन आदि आदर्श भारत की अन्य शिक्षण संस्थाओं के लिए प्रकार स्तम्भ बन गये है। आज की भारत की अनेक शिक्षण संस्थाएं विश्व-भारती के आदर्शों का अनुकरण करती है तथा अपनाने का प्रयत्न करती है। जो आज के शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए शिक्षा का विचार आज के वर्तमान समय में श्री टैगोर के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की महत्ता बढ़ती जा रही है जबकि श्री टैगोर ने इसका आरम्भ विश्व-भारती में बीसवीं सदी के आरम्भ में ही कर दिया था।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्ति निकेतन शिक्षा की प्रासंगिकता परिलक्षित होती है। श्री टैगौर का कहना है कि मानव जीवन का मूल्य मात्र शिक्षा प्राप्त करना ही नहीं किसी पद पर नियुक्त हो जाना नहीं बल्कि मानवतावाद के मूल्यों की रक्षा करना तथा अध्यात्मिक चेतना को विकसित करना तथा भाईचारा, विश्वबन्धुत्व को बल देना मनुष्य के जीवन का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। अतः नई शिक्षा नीति-2020 के सिद्धान्त एवं उद्देश्यों में विश्व बंधुत्व के उद्देश्यों में श्री टैगोर की अमिट छाप आज भी दिखाई देती है।

अतः भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षा दर्शन विद्यार्थियों के साथ-साथ समाज एवं देश को एक नयी दिशा प्रदान करने के साथ-साथ विश्वबन्धुत्व एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में विशेष योगदान प्रदान करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अल्तेकर (1979). ''प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति'' मनोहर प्रकाशन, वाराणसी।
- चौहान, नरेन्द्र सिंह (1981). ''व्यवहारपरख शोध के वैज्ञानिक आयाम'' श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा।
- घोष, शिशिर कुमार (2002). ''रवीन्द्रनाथ ठाकुर'', साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन 35 फिरोजाशाह मार्ग, नई दिल्ली।
- जायसवाल, सीताराम. ''विश्व के कुछ महान शिक्षक'', न्यू बिल्डिंग्स अमीनाबाद, लखनऊ संस्करण।
- पाण्डेय, राम सकल (1988). ''शिक्षा समीक्षा'' प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- राय, क्षितीश (1961). ''गुरूदेव रवीन्द्रनाथ'' पुराना सचिवालय दिल्ली।

- सिंह, डॉ0 बी0एन (1997). ''भारतीय सामाजिक चिन्तन,'' विवेक प्रकाशन, जवाहर, नगर दिल्ली।
- सैयदेन, के0जी0 (1962). ''भारतीय शैक्षणिक विचारधारा'', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
- शिवनाथ (1973). रवीन्द्रनाथ साहित्य की समीक्षा'' हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ।
- सिंह, डॉ0 सुरेन्द्र (1971). ''सामाजिक अनुसंधान'' उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ एकादमी, लखनऊ।
- टैगोर, रवीन्द्रनाथ (2000). ''गीतांजलि' साहित्य सृष्टि'' दिल्ली संस्करण।

Disclaimer/Publisher's Note:
The statements, opinions and data contained in all publications are solely those of the individual author(s) and contributor(s) and not of JNGBU and/or the editor(s). JNGBU and/or the editor(s) disclaim responsibility for any injury to people or property resulting from any ideas, methods, instructions or products referred to in the content.